Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

काश्मीर शैवदर्शन में जीव का स्वरूप

डॉ0 सी0 के0 झा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महाराणा प्रताप नेशनल कॉलेज, मुलाना, अम्बाला, हरियाणा।

शोधसारांश– जीव सृष्टि का केन्द्र बिन्दु है और दर्शन की रचना जीव के लिए ही हुई है। इसलिए भारतीय–दर्शन के विविध ग्रन्थों में जीव का वर्णन किसी न किसी रूप में अवश्य किया गया है। समस्त भारतीय आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों में जितने भी सिद्धांतों की उद्भावना की गई है, वे सभी जीव के यथार्थ स्वरूप का बोध कराने के लिए ही किये गये हैं। जीव शब्द का अर्थ प्राण धारण करने वाला होता है। प्राण का व्यापार नहीं हो सकता। अतः सूक्ष्म शरीर जो कि नरक स्वर्ग या मानव योनी में आत्मा के साथ रहता है, उससे विशिष्ट आत्मा जीव कहलाता है।

काश्मीर शैवदर्शन में जीव की धारणा स्वतन्त्र तथा विलक्षण है। पंचमहाभूतमय स्थूल शरीर वाले इस जीव में बुद्धि, अहंकार एवं मन से युक्त एक अंतःकरण भी होता है। अंतःकरण एवं पंच–तन्मात्राओं को मिलाकर एक पुर्यष्टक बनता है। वही जीव का सूक्ष्मशरीर है। तथा इन सब का केन्द्र बिन्दु शिव या चैतन्य है। वही चैतन्य (शिव) आणव मल के कारण अणू या जीव कहलाता है। इस प्रकार जो अपनी पूर्ण अहंता में शिव था। वहीं संकोच ग्रहण के कारण जीव बन जाता है। शिव संकुचित जीव रूप में प्रकट होकर उसकी शक्तियाँ, सर्वकर्तता, सर्वज्ञता, नित्यता, पूर्णता और स्वातन्त्रय संकुचित होकर जीव के आवरण रूप में परिछिन्न होती है। जीव के इन्हीं विविध आयामों पर विस्तृत व्याख्या इस लेख में की जाएगी। ताकि प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जीव का स्वरूप स्पष्ट हो सके।

मुख्य शब्द– काश्मीर, शैवदर्शन, जीव, सृष्टि, शक्तियाँ, सर्वकर्तता, सर्वज्ञता, नित्यता, पूर्णता।

जीव सृष्टि का केन्द्र बिन्दु है और दर्शन की रचना जीव के लिए ही हुई है, इसलिए भारतीय दर्शन के विविध ग्रन्थों में जीव का वर्णन किसी न किसी रूप में अवश्य किया गया है। समस्त भारतीय आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों में जितने भी सिद्धांतों की उद्भावना की गई है, वे सभी जीव के यथार्थ स्वरूप का बोध कराने के लिए ही किये गऐ हैं। भारतीय दर्शन के मर्म को जानने के लिए उसमें वर्णित मूलभूत तत्त्व जीव के स्वरूप का विवेचन किया गया है। यही कारण है कि सभी दर्शनों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से जीव के स्वरूप का वर्णन किया है। जब तक जीव को उसके स्वरूप का ज्ञान नहीं हो जाता, उसे जगत् के स्वरूप का भी ज्ञान नहीं हो सकता है।

जीव शब्द की व्युत्पत्ति : 'जीव' शब्द भ्वादिगण की परस्मैपद् धातु ''जीव'' (प्राण धारण करने) वाले से ''क'' प्रत्यय लगाने से बना है, जिससे जीव शब्द का अर्थ प्राण धारण करने वाला होता है। प्राण का व्यापार नहीं हो सकता, अतः सूक्ष्म शरीर जो कि नरक–स्वर्ग या मानव योनि में आत्मा के साथ रहता है उससे विशिष्ट आत्मा जीव कहलाता है।

जीव के स्वरूप की व्याख्या भिन्न–भिन्न दार्शनिकों ने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। काश्मीर शैव दर्शन के जीव स्वरूप विचार से पूर्व अन्य दार्शनिकों का विचार साररूप से विवेचनीय है।

चार्वाक के अनुसार जीव का स्वरूप : जीव की उत्पत्ति के विषय में चार्वाको ने जो मत प्रस्तुत किया है, वह दूसरे दार्शनिक मतों की अपेक्षा अपना अलग ही महत्त्व रखता है। उन्होंने जीव की सत्ता स्थायी रूप से स्वीकार नहीं की, अपितु उसे अनित्य माना है। उनके अनुसार जीव भी शरीर के साथ उत्पन्न तथा नष्ट होता है।

जिस प्राकर जल में बुद्बुदे उत्पन्न होते हैं, एक क्षण तक टिकते हैं और फिर उसी जल में विलीन हो जाते हैं।

उसी प्रकार जीव की दशा है। जीव अनित्य होता है कतिपय क्षणों तक टिकता है और फिर वह यहीं विलीन हो जाता है। देहात्मवाद के पक्ष में आचार्य माधव प्रतिपादित करते हैं कि ''मैं स्थूल हूँ'', ''मैं कृश हूँ'' इत्यादि लोक सामान्य के भाषिक प्रयोग शरीर को ही आत्मा सिद्ध करते हैं।[1] आत्मा भौतिक शरीर के अतिरिक्त चेतन तत्त्व नहीं है, क्योंकि ऐसी आत्मा का प्रत्यक्ष नहीं होता है।

इस प्रकार चार्वाकों ने पृथक आत्मा की सत्ता को अस्वीकार किया है, किन्तु सुशिक्षित चार्वाक मत वाले यह मानते हैं कि जब तक शरीर रहता है, तब तक एक तत्त्व सभी अनुभवों का भोक्ता और द्रष्टा रूप में रहता है। किन्तु मृत्यु के बाद ऐसा तत्त्व नहीं रहता[2]

इस प्राकर यह उल्लेख किया जा सकता है कि चार्वाक दर्शन में जीव शब्द का प्रयोग बहुत कम हुआ है। जहाँ कहीं हुआ है वह आत्मा और शरीर को लेकर हुआ है। यहाँ आत्मा शब्द का प्रयोग व्यावहारिक तथा भौतिक दृष्टि से किया गया है। जिस प्रकार उपनिषदों में शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार से युक्त अज्ञानाच्छादित चैतन्य को ही जीव स्वीकार किया है। उसी प्रकार यहाँ पर शरीर से युक्त चैतन्य को व्यावहारिक तथा भौतिक दृष्टि से आत्मा शब्द का वाच्य स्वीकार किया है।

बौद्ध दर्शन में जीव का स्वरूप : बौद्धों के अनुसार जीवात्मा विज्ञान के रूप में है। क्योंकि विज्ञान क्षण–क्षण बदलने वाला प्रवाह रूप है, इसलिए आत्मा भी क्षण–क्षण बदलने के कारण अनित्य है। शून्यवादी बौद्ध तो आत्मा के मूलरूप को शून्य मानते हैं, किन्तु व्यवहार की दशा में आत्मा की प्रतीति भी उन्हें माननी पड़ती है। नागार्जुन ने पाँच स्कन्धों को अवास्तव माना है।[3] जीवात्मा भी अवास्तविक है। यह न तो पाँच स्कन्धों से भिन्न है और न अभिन्न है।[4] बुद्ध ने ''आत्मा'' के लिए मौन का ही प्रयोग किया था। लेकिन बौद्ध दर्शन में जो चित्त के पांच विकार (स्कन्ध) हैं, उसको जीव के रूप में अभिहित किया गया है, ये स्कन्ध है– रूप स्कन्ध, विज्ञान स्कन्ध, वेदना स्कन्ध, संज्ञा स्कन्ध और संस्कार स्कन्ध।[5] विज्ञान दो प्रकार के हैं– 1. आलय विज्ञान 'अहम्' के रूप में, 2. प्रवृत्ति विज्ञान 'इदम्' के रूप में।

इस प्रकार ''जीव'' के विषय में बौद्ध चिन्तन में पाँच श्रेणी विभाग प्राप्त होते हैं। पुद्गलानैरत्यवाद, पुद्गलास्तित्ववाद, त्रैकालिक एवं वर्तमान धर्मवाद, धर्मनैरात्म्यवाद या शून्यवाद तथा विज्ञप्तिमात्रवाद।[6] ये दृष्टिकोण बुद्ध की ''सत'' द्रव्य को मानने की सम्भावना ही नहीं है। बौद्ध परम्परा की सभी शाखाओं को देह–भेद से स्वसम्मत से चित सन्तान या जीव वास्तविक भेद इष्ट है। ''विज्ञप्तिमात्र'' को स्वीकार करने वाले विचार कभी विज्ञान सन्ततियों में भेद मानकर वास्तविक जीव भेद का प्रस्ताव करते हैं।[7]

जैन दर्शन में जीव का स्वरूप : जैन दर्शन के अनुसार जीव अमूर्त है, कर्ता है, स्वदेश प्राण है, संसारी है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्व गमन करने वाला है।[8] जैन दर्शन में जीव का स्वरूप उपयोग है। ''उपयोगो लक्षणं''[9], ''उपयोग'' यह जीव के लिए जैन धर्म का एक पारिभाषिक शब्द विशेष है। उपयोग ''उपयुक्त अवस्था'' को कहते हैं। ज्ञानदर्शन की उपयुक्त अवस्था ही उपयोग है।

इस प्रकार जीव स्वतः सिद्ध है, अनादि है, अनन्त है, ज्ञानादि अनन्त धर्मों का आधार और अविनाशी है।[10] वह ''जीव'' वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अव्यावाध और अगुरूलघु[11] इन साधारण गुणों और चरित्र, दर्शन,

सुख, ज्ञान और सम्यकत्व[12] इन विशिष्ट गुणों से युक्त होता है। जीव[13] जैन दर्शन में इस तरह सामान्य और विशेष उभय रूप स्वीकार किया गया है। द्रव्य अर्थात् आत्मत्व दृष्टि से जीव नित्य या शाश्वत है और पर्याय अर्थात् उत्पाद एवं व्यय की दृष्टि से जीव अनित्य अर्थात् क्षणिक है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक द्रव्य द्रव्यार्थिकनय, शुद्ध नय अथवा निश्चयनय[14] की दृष्टि से नित्य होता है और अशुद्धनय या व्यवहारनय की दृष्टि से ''अनित्य'' माना गया है।

सांख्य दर्शन में जीव का स्वरूप : भारतीय दर्शनों में सांख्य–दर्शन अति प्राचीन माना जाता है। सांख्य दर्शन में ''जीव'' शब्द के स्थान पर ''पुरुष'' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें 25 तत्त्वों को स्वीकार किया गया है तथा चेतन तत्त्व आत्मा को पुरुष की संज्ञा दी गई है। ''जीव'' पुरुष की ही अवस्था विशेष का द्योतक है।[15] इस दर्शन में प्रकृति को जड़ और पुरुष को चेतन माना गया है। सांख्य के अनुसार कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व बुद्धि में रहते हैं और बुद्धि पुरुष के समीप है। बुद्धि का प्रतिबिम्ब पुरुष पर पड़ता है तब यह पुरुष अज्ञान के कारण बुद्धि के गुणों का आरोप करने से कर्ता सा प्रतीत होता है। इस प्रतिबिम्ब के कारण ही यह पुरुष ''जीव'' कहलाता है।

सांख्य दर्शन में पुरुष शब्द का प्रयोग दो दृष्टिकोणों से किया गया है यथा सांसारिक दृष्टि से और पारमार्थिक दृष्टि से।[16] जब यह जीव सांसारिक अवस्था में होती है तब उसमें कर्तृत्व, भोक्तृत्व तथा दृष्टत्व आदि गुण पाए जाते हैं।[17] परन्तु पारमार्थिक स्थिति में पुरुष विमुक्त हो जाता है तब उसे सभी गुणों से शून्य कहा गया है।[18]

पुरुष प्रकृति के साथ पंगु और अंधे के समान संयोग इसलिए करता है कि इस पर प्रकृति का स्वरूप प्रकट हो जाय और यह प्रकृति के साहचर्य से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त कर सके। तात्पर्य यह है कि असंग, अकर्ता पुरुष में बन्ध, मोक्ष का जो व्यवहार किया जाता है वह प्रकृति के बन्ध मोक्ष का ही भ्रमवश उसमें किया जाता है किन्तु सांख्यशास्त्रोक्त तत्वाभ्यास से पुरुष को बन्ध मोक्ष की भ्रान्ति नहीं हो पाती।[19] जब पुरुष को विवेक ज्ञान हो जाता है तब वह सभी गुणों से रहित हो जाता है। यही पुरुष (जीव) का यथार्थ स्वरूप है।

योग–दर्शन में जीव का स्वरूप : योगदर्शन ने भी ''जीव'' नामक किसी द्रव्य को स्वीकार नहीं किया है। जीव को स्वीकार नहीं करने का कारण ''चित्त'' को विभु मानना ही प्रतीक होता है। योग भाष्य में आचार्य व्यास कहते हैं कि इस विभु ''चित्त'' की वृत्ति ही संकोच विकास वाली है।[20] योग का ''चित्त'' विभु होने से नित्य और नित्य होने से अनादिवासना का आश्रय हो सकता है।[21] इसकी वृत्ति संकोच विकास वाली होने के कारण अनित्य तथा क्रियाशील है। अतः प्रलय काल में इस का लय और सृष्टि में इसका संसरण होता है।

योगसूत्र में जीव के स्थान पर पुरुष शब्द का ही प्रयोग किया गया है। पातञ्जल योगसूत्र में जीव के व्यवहारिक तथा पारमार्थिक इन दो रूपों का वर्णन किया है। अज्ञान के कारण जीव चित्त के साथ अपना तादात्म्य कर लेता है।

जब पुरुष देश काल और कारण की सीमा से परिच्छिन्न हो जाता है, तब इन सीमाओं के आरोप के कारण ही यह व्यवहारिक जीव कहलाता है। जब चित्त किसी वृत्ति में परिणत हो जाता है तब उस पर पुरुष के चैतन्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है और वह तदाकार हो जाता है, अर्थात् पुरुष को ऐसा प्रतीत होता है।[22] यही जीव की वास्तविक अवस्था है।

न्याय–वैशेषिक में जीव का स्वरूप : न्याय–वैशेषिक दर्शन जीव जैसे तत्त्व को स्वीकार नहीं करता। न्याय के अनुसार आत्मा का शरीर के साथ संयोग जन्य है एवं वियोग ही मृत्यु है।[23] आत्मा एवं मन का संयोग ही जीव का कारण है। पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म के संस्कार युक्त होकर आत्मा का शरीर से संयोग होता है।

आत्मा एवं मन का संयोग ही जीव कहलाता है। मन एवं आत्मा संयुक्त रूप से संसार का कारण है।[24] न्याय–सूत्र में कहा गया है कि पूर्व जन्म में किए पाप, पुण्य रूप कर्म के अनुसार जीव के शरीर की उत्पत्ति होती है।[25] यही न्याय–वैशेषिक के अनुसार जीव का वास्तविक रूप होता है और ''जीव'' शब्द का न्याय–वैशेषिक दर्शन में अलग से कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया है। आत्म तत्त्व को ही ''जीव'' के रूप में दर्शाया गया है।

पूर्व–मीमांसा दर्शन में जीव का स्वरूप : भारतीय दर्शन श्रृंखला में मीमांसा दर्शन का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह आत्मवादी दर्शन है। यह आत्मा को विभु मानता है एवं पुनर्जन्म को स्वीकार करता है। मीमांसा श्लोक वार्तिक में कहा गया है कि आत्मा नित्य एवं विभु है। इस प्रकार ''विभु'' आत्मा बिना क्रिया के दूसरे देहों के साथ सम्बद्ध होता है।[26] प्रभाकर मत में भी आत्मा को जड़ माना गया है। इसमें ज्ञान, सुख–दुःख आदि उत्पन्न होते हैं।

आत्मा, ज्ञाता एवं ज्ञेय भी है। मीमांसा दर्शन में जीव को आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है।

अद्वैत–वेदान्त में जीव का स्वरूप : सर्वव्यापी परमात्मा शरीर, मन, बुद्धि के संघात में व्याप्त होता हुआ तादात्म्य को प्राप्त होता है। इससे बुद्धि में अहंकार की प्राप्ति होती है और इस अवस्था में वह ''जीव'' कहलाता है। आचार्यशंकर के अनुसार ''जीव'' बुद्धि आदि की उपाधियों से परिच्छिन्न होने का अभिमानी है। एक अद्वैत तत्त्व ब्रह्म के ही माया शक्ति के कारण ईश्वर एवं अविद्योपाधि के कारण ''जीव'', ये दो भेद हैं। जब तक बुद्धि रूप उपाधि के साथ ''जीव'' का सम्बन्ध रहता है तब तक जीव का जीवत्व एवं संसारित्व है।[27] जीव अपने आपको शरीर, कर्ता, भोक्ता, पापी, अल्पज्ञ, संसारी आदि कहने लगता है। ब्रह्म अविद्या के कारण जीव तत्त्व को प्राप्त होता है। वस्तुतः जीवों का वास्तविक स्वरूप ब्रह्म ही है।

कर्ता एवं भोक्ता ''जीव'' की ही विश्व, तैजस और प्राज्ञ संज्ञाएँ हैं। जीव की तीन अवस्थाएँ– स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण इन तीन शरीरों एवं अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पंच कोशों पर आधारित है।

अद्वैत वेदान्त में जीवों की संख्या के विषय में दो मत हैं– अनेक जीववाद और एक जीववाद है। परन्तु यह सारा विवेचन पारमार्थिक धरातल का नहीं है। उस दृष्टि से तो ये सभी परिकल्पनायें व्यवहारिक एवं मिथ्या है।[28] एक जीववाद में शुद्ध चैतन्य को साथी नहीं माना जा सकता अपितु अविद्या–वृत्ति में प्रतिबिम्बित चैतन्य साक्षी कहलाता है।[29] उपनिषदों के मन्त्र अनेक जीववाद का पोषण करते हैं। यथा ''जिस प्रकार सुदीप्त अग्नि से उसी के समान रूप वाली हजारों स्पुलिंग निकलती है, हे सोम्य! उसी प्रकार अक्षर से अनेक भाव (जीव) प्रकट होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।[30] यही जीव स्वरूप है।

नकुलीश पाशुपत दर्शन में जीव का स्वरूप : इस दर्शन में जीव के विषय में विशिष्ट धारणा है। उन्होंने जीव को ''पशु'' शब्द से अभिहित किया है। ''पशु'' शब्द ''पाश'' से सम्बन्धित हैं जिसका अर्थ ''कारण'' तथा ''कार्य'' है तथा जो शास्त्रीय भाषा में ''कला'' कहलाता है। यद्यपि समस्त, सर्वव्यापक तथा शुद्ध चैतन्य स्वरूप है, तथापि वे अपने शरीरों का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। परन्तु कारण तथा कार्य के स्वरूप का बोध नहीं कर सकते हैं। पशु 'कार्य' का द्योतक है। कार्य वह है जो स्वतन्त्र नहीं है। कार्य तीन प्रकार के है– 1. विद्या, 2. अविद्या, 3. पशु।[31] गुण अपने–अपने आश्रयों के अधीन है, जड़ पदार्थ जीवों के अधीन है। जीवों में एक–दूसरे की पराधीनता दिखाई देती है। स्त्री पति के अधीन, नौकर अपने स्वामी के अधीन, प्रजा राजा के अधीन इत्यादि।

जीवों के गुणों को विद्या तथा गुण सहित पृथिवी आदि जड़ पदार्थों को कला कहते हैं। पशुओं के गुणों को विद्या कहते हैं। इसके दो भेद हैं– 1. बोध स्वभाव और 2. अबोध स्वभाव वाली विद्या।[32]

ज्ञानेन्द्रिय–जनित बोध स्वभाव वाली विद्या चित्त कहलाती है। अबोध विद्या धर्म तथा अधर्म दो रूपों वाली होती है।

चेतन के अधीन रहने वाली कला अपने आप में अचेतन होती है। इसमें एक कार्य के रूप में कला और कारण के रूप में कला। कार्य कला में महाभूत तथा पांच तन्मात्राएँ होती है। कारण कला में पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं तीन अन्तःकरण होते हैं।[33]

जीव वह है जिसमें जीवत्व हो। यह दो प्रकार का है– 1. साञ्जन, 2. निरञ्जन अर्थात् मलयुक्त[34] और निर्मल साञ्जन जीव वह होता है जिसका सम्बन्ध शरीर और इन्द्रियों से होता है।[35] इसके विपरीत निरञ्जन होता है। इस प्रकार इस दर्शन का जीव कार्य और कारण दोनों रूपों में होता है।

शैवागम में जीव का स्वरूप : प्राचीन आगमाधारित शैव मत में जीव के विषय में कुछ अलग धारणाएँ हैं। इसमें जीव–आत्माओं को पशु कहा गया है क्योंकि ये पशु के समान अविद्यारज्जु (रस्सी) द्वारा जगत में बँधे है। जीव नित्य है तथा इच्छा, ज्ञान, क्रिया से युक्त होने के कारण ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता है। ये स्थूल शरीर से, सूक्ष्म शरीर से इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण आदि से भिन्न हैं। बद्ध जीव इच्छा, ज्ञान, क्रिया से सीमित दिखाई देता है, तथा मोक्षावस्था में अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। पशु जीवात्मा है, जो अणु या सूक्ष्म है क्षेत्रज्ञ नामों से ख्यात है, पर्यायवाची शब्दों से जिसका बोध हो वह जीवात्मा पशु है।[36]

चैतन्य नित्य है, वह दृक् एवं क्रिया के रूप में है, इसलिए वह नित्य रूप से कर्ता है। दृक और क्रिया रूप में जो चैतन्य है, वह आत्मा के सभी समय सभी ओर से है। इसलिए मुक्ति होने पर सभी ओर मुख वाला चैत्न्य सुना जाता है।[37] शैवागम मत में यह जो चैतन्य (जीव) है वह तीन प्रकार का है–

1. विज्ञानाकल, 2. प्रलयाकल, 3. सकल।[38]

1. विज्ञानाकल जीव : जिसने ज्ञान, ध्यान, तप, योग द्वारा किये गए कर्मों के संस्कारों के क्षय के परिणामस्वरूप समस्त कलाओं से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है तथा जिसमें मल मात्र केवल शेष रहता है। यह दो प्रकार का होता है– 1. जिसका कालुष (मल) समाप्त हो गया है। 2. जिनका कालुष (मल) समाप्त नहीं हुआ है।[39] जिन जीवों के मल का विनाश हो जाता है वे जीवों में श्रेष्ठ तथा ईश्वर प्राप्ति के योग्य है, इन्हें ही समाप्त कलुष विज्ञानाकल जीव कहते हैं। अब तक समाप्त कलुष विज्ञानाकल जीवों के आठ विद्येश्वरों को यह पद प्राप्त हुआ है। अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एक नेत्र, एकरूद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी ये आठ विद्येश्वर कहे गये हैं। ये विद्येश्वर जीवों में ऊँचे हैं इन्हें शिवत्व की प्राप्ति होती है।[40]

2. प्रलयाकल जीव : शैव मत में दूसरा पशु प्रलयाकल है। इसकी कलाओं का क्षय जगत् के प्रलय द्वारा हो चुका है। प्रलयाकल जीव में कर्म के संस्कार और मल दोनों ही रहते हैं जिसे धर्माधर्मरूप कहकर पुनर्जन्म का कारण माना गया है।[41] प्रलयकाल तक ये अबोध रूप कर्ता मुक्त से रहते हैं, परन्तु प्रलय के अनन्तर नये शरीर में पुनः जन्म–मरण के संसृति के पात्र बन जाते हैं।[42] प्रलयाकल जीव दो प्रकार का होता है जिसमें पहला प्रलयाकल जीव मोक्ष प्राप्त करता है दूसरा पुर्यष्टक (शरीर) प्राप्त करके कर्म के वश में होकर नाना प्रकार के जन्म प्राप्त करता है। प्रलयाकल जीव में पुर्यष्टक वह होता है, जिसमें पांच महाभूत एवं तीन अन्तःकरण होते हैं। अघोर शिवाचार्य के अनुसार– ''पुर्यष्टक' उस समूह देह को कहते हैं जो प्रत्येक पुरुष के लिए निश्चित रहती है, सृष्टि के आरम्भ से लेकर कला के अन्त तक या मोक्ष तक स्थिर रहती है।[43]

3. सकल जीव : सकल जीव वह होता है जिसमें मल, कर्म तथा माया ये तीनों पात्र हैं। सकल जीव भी दो प्रकार का होता है। 1. ऐसा पशु जिसका कलुष परिपक्व हो चुका है तथा 2. ऐसा पशु जिसका कलुष परिपक्व नहीं हुआ है। प्रथम को अनेक मंत्रों का मन्त्रेश्वर होकर आचार्य दीक्षा से मोक्ष प्रदान करता है।

जिनके कलुष का परिपाक नहीं हुआ, ऐसे जीवात्मा को कर्मों के अनुसार परमेश्वर भोग भोगने के लिए लगाये रखता है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में जीव का स्वरूप : प्रत्यभिज्ञा (काश्मीर शैव दर्शन) में जीव की धारणा स्वतन्त्र तथा विलक्षण है। पंचमहाभूत मय स्थूल शरीर वाले इस जीव में बुद्धि, अहंकार एवं मन से युक्त एक अन्तःकरण भी होता है।[44] अन्तःकरण एवं पञ्चतन्मात्राओं को मिलाकर एक पुर्यष्टक बनाता है। यही जीव का सूक्ष्म शरीर है। मृत्यु के बाद जीव इसी सूक्ष्म शरीर के साथ विचरण करते रहता है। इसके अन्दर प्राण शक्ति भी होती है। यह परमेश्वरीय शक्ति है जो जीव और विश्व दोनों में काम करती है। जीव के अन्दर कुण्डलिनी शक्ति भी होती है जो सुप्तावस्था में पड़ी रहती है। इन सबका केन्द्र बिन्दु शिव या चैतन्य है। यही चैतन्य (शिव) आणव मल के कारण अणु या जीव कहलाता है।[45]

जीव का बन्धन ज्ञात अख्याति या अविद्या के कारण है। यह अविद्या जीव का आणव मल है जिसके द्वारा सर्वव्यापि चैतन्य एक अणु या परिसीमित दशा में आ जाता है। इसी अविद्या या संकोच के कारण जीव अपने को इस सर्वव्यापी चैतन्य से पृथक्, अल्पज्ञान क्रियाशक्ति से युक्त समझता है। जीवात्मा शिव तथा जड़ पदार्थों से भिन्न तथा परस्पर भिन्न, अनेक अणु रूप, नित्य, कर्ता, भोक्ता, रूपवान, जन्म मरण वाला होता है। यह निरवयव तत्व है जो कि शरीर के संयोग–वियोग से जन्म–मरण को प्राप्त होता है। जीव का कर्म और स्वतन्त्रता शिव की इच्छा के बिना सम्भव नहीं। शिव ही पूर्ण स्वतन्त्र, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। जीवों के अन्तर्यामी के रूप में शिव की अनुकम्पा आवश्यक है। सुख–दुःख का अनुभव करने से यह जीव शिव से भिन्न है, किन्तु स्वरूपतः यह उसका अंश है।[46]

माया को स्वीकार कर आचार्य क्षेमराज ने माया का ग्रन्थ्यात्मक स्वरूप बताया है, जो तीन प्रकार का होता है।[47] यह त्रिविधिग्रन्थि रूप माया ही प्रमााता में संकुचित जीव स्वरूप को उत्पन्न करती है।[48] माया की ये तीन ग्रन्थियाँ उससे उत्पन्न होने वाले तीन पाश हैं जिसकी संज्ञा आणव, मायीय और कार्म है। माया का स्वरूप तिरोधानकारी है। वह अपने दुर्घट संपादन–सामर्थ्य से शुद्ध प्रमाता के प्रकाश रूप का तिरोधान कर देती है, जिससे वह जीव अनवच्छिन्न प्रकाश रूप से परिच्छिन्न प्रकाश रूप हो जाता है। इस प्रकार जो अपनी पूर्णाहन्ता में शिव था वही संकोच ग्रहण के कारण जीव बन जाता है।[49]

शिव के संकुचित जीव रूप में प्रकट होकर उसकी शक्तियाँ सर्वकर्तता, सर्वज्ञता, नित्यता, पूर्णता और स्वातन्त्रय संकुचित होकर जीव के आवरण रूपों में परिच्छिन्न होती है।[50] माया को स्वीकार कर लेने के कारण बोध मलिन होकर पुरुष बन जाता है, जो पशु है तथा काल, कला, नियति, राग और अविद्या से अच्छी तरह बंधा हुआ है।[51] माया से लेकर नियति पर्यन्त इन छह कञ्चुकों से स्वरूप संकोच हो जाने पर चिदाात्मा परिमित हो जाता है। इस परिमित आत्मा को ही अणु, जीव, पुमान्, मितात्मा, परिमित, प्रमाता, पुद्गल आदि विविध नामों से अभिहित किया जाता है।[52] प्रत्यभिज्ञा दर्शन के स्वातंत्र्य सिद्धान्त के अनुसार शिव अपने स्वातत्र्य से अपनी परिपूर्ण स्वभाव को छिपाकर, सर्वज्ञता और सर्वकतृता को भूल जाने की कल्पना कर डालता है और ऐसा हो जाने पर स्वयं को अगणित अल्पज्ञ और अल्पकर्ता जीवों के रूप में प्रकट कर देता है।[53]

शिव का अपने स्वातंत्र्य स्वभाव सेयह परिगृहीत अणुभाव या परिमित भाव ही पुरुष–तत्त्व कहलाता है।[54] कञ्चुकरूपी पाशों से आबद्ध होने के कारण जीव को पशु भी कहा गया है।[55] पुरुष तत्त्वतः शिव ही है, किन्तु माया के तिरोधानकारी प्रभाव से विपर्यस्त स्वरूप होकर वह परिमित जीव बन जाता है। इस प्रकार अज्ञातवश देह के साथ तादात्म्य (अभेद) स्थापित कर लेने पर इस पुरुष (जीव) की संज्ञा देह–प्रमाता हो

जाती है। जब तक जीवात्मा को अपने शिव भाव से स्वातंत्र्य का बोध नहीं होता तब तक वह अनेकानेक जीवयोनियों में विचरण करता हुआ अपने कर्मों के अनुसार सुख–दुःख को भोगता रहता है।[56]

शास्त्रों के अभ्यास के साथ रहस्यात्मक साधनों से अथवा गुरु के अनुग्रह से जब पूर्ण स्वतन्त्र स्वभाव की प्रत्यभिज्ञा हो जाती है, तब वह सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर आत्म–स्वरूप में विश्रान्त हो जाता है। आत्म स्वरूप की पूर्णता की अभिव्यक्ति ही उसकी मुक्ति है।[57] सांख्य दर्शन की भाँति काश्मीर शैव दर्शन भी पुरुष को अनेक मानता है। मुक्त जीव महेश्वर के समान ही सभी प्रमेय पदार्थों को अपनी आत्मा से अभिन्न समझते हुए समान रूप से देखता है। अर्थात् विषयों में भेद भाव नहीं करता है। दूसरी ओर बद्ध जीव अभेद का ज्ञान न होने के कारण प्रमेय पदार्थों में कई प्रकार के भेद देखता है।[58]

ईश्वर एवं जीव : ईश्वर तथा जीव माया और अविद्या रूप उपाधियों से कल्पित है। इतना अन्तर तो अवश्य है कि ईश्वर माया को अपने वश में रखने वाला है तथा जीव अविद्या के वश में रहने वाला है। विश्व का सम्बन्ध ईश्वर तथा जीव दोनों से है। इस ईश्वर का कार्य और जीव का भोग–साधन समझना चाहिए। ईश्वर इस जगत् का निर्माता है और जीव उसका भोक्ता है। परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से जीव ही शिव है और शिव ही जीव का रूप है। इस दूती के दृष्टान्त से प्रतिपादित ईश्वर तथा तदंश जीव का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

जीव प्रमाता के रूप मे : काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार अप्रतिहत शक्ति एक परमेश्वर ही सर्वत्र अवस्थित है और वही अपने स्वातन्त्र्य स्वभाव के कारण प्रमातृ–प्रमेयादि अनन्त रूपों में आत्म अवभासन की इच्छा से नाना रूप धारण करता है। इस दर्शन में शिव, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर मन्त्र अथवा विद्येश्वर, विज्ञानकल, प्रलयाकल और सकल प्रमाताओं का उल्लेख मिलता है।[59]

परमेश्वर अर्थात् परमशिव को पर प्रमाता माना जाता है, जिसका स्थान सभी प्रमाताओं से उर्ध्व है। इसलिए इसका परिगणन इन सात प्रमाताओं में नहीं किया गया है। सात प्रकार के प्रमाताओं में सर्वोच्च स्थान शिव प्रमाता का है जहाँ प्रमेय कल्पना का संस्पर्श तक नहीं होता और सर्वत्र केवल एक शुद्ध अहन्ता का ही विमर्श होता है। शिव प्रमाता सर्वथा शुद्ध प्रमाता है। शिव से लेकर विद्येश्वर तक चार प्रकार के प्रमाताओं की अवस्थिति शुद्ध अध्वा के विभिन्न स्तरों पर बतलायी गई है। इसके अतिरिक्त तीन प्रकार के प्रमाता अशुद्ध अध्वा के अन्तर्गत आते हैं।

जीव का जड़ होना सम्भव नहीं : काश्मीर शैव दर्शन में जीव को जड़ होना सम्भव न मानकर उसे चेतन स्वीकार किया गया है। आचार्य क्षेमराज के अनुसार बुद्धि, शरीर, शब्द, ज्ञान, प्राण, ईश्वर आदि सभी भूमिकाएँ मात्र शिव की स्वतन्त्र ईच्छा से गृहीत है। भेदवादी अंश एवं आंशिक में अभेद को जानते हुए देहादि स्थलों में आत्मतत्त्व का अभिमान करते हैं।[60] अप्रकाशित अथवा जड़ में यह योग्यता सम्भव नहीं। यथा देह प्राण आदि अप्रकाशित है, अचेतन है सब शिव (चैतन्य) के प्रकाश से ही प्रकाशित है।[61] इस प्रकाश जीव का जड़ होना सम्भव नहीं है।

बन्धन : शैव दर्शन की दृष्टि से सब कुछ स्वयं परमेश्वर ही है। विद्या, अविद्या, द्वैत–अद्वैत, बन्धन, मोक्ष आदि की कल्पना केवल व्यवहारिक है। जीव का बन्धन जन्मजात अख्याति या अविद्या के कारण है। यह अविद्या जीव का आणव मल है जिसके द्वारा सर्वव्यापी चैतन्य एक अणु या परिसीमित दशा में आ जाता है। इस प्रकार शैव दर्शन में बन्धन का लक्षण अज्ञान है। यह अज्ञान ज्ञानाभव नहीं अपितु ज्ञान का संकोच है।

शक्तिपात : परमशिव यह जानते हैं कि किस प्राणी को किस समय किस प्रकार के साधन मार्ग द्वारा कितनी तीव्र गति से चरम लक्ष्य की ओर चलकर अन्तिम छोर पर पहुँचना है। इसलिए वे जिसको जैसी अन्तःप्रेरणा देते हैं वह वैसे ही चलता है। परमशिव द्वारा दी गई इस अन्तःप्रेरणा को शक्तिपात कहा जाता है। यह

शक्ति पात मुख्यतया तीन प्रकार का होता है– तीव्र, मध्य, और मन्द, तीव्र शक्तिपात वाले को जो पूर्वजन्म के संस्कारवश उन्नत अवस्था को प्राप्त हुए रहते हैं, उन्हें बिना किसी साधना के मोक्ष लाभ हो जाता है। मध्य शक्तिपात के पात्र होने के कारण गुरू से दीक्षा प्राप्त करके साधना करते हैं और उचित समय पर मुक्त हो जाते हैं। सबसे कम विकसित जीव को मन्द शक्ति पात होता है जिसके कारण उनके अन्दर आध्यात्मिक मार्ग, साधना और मोक्ष लाभ के लिए उत्कण्ठा जाग्रत होती है और वे भी साधना द्वारा इस जन्म या जन्मान्तर में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। गति भेद के कारण शक्तिपात के सत्ताईस भेद हो जाते हैं। सिद्धान्ततः यह समझना चाहिए कि प्रत्येक प्राणी किसी न किसी शक्तिपात के अन्दर रह रहा है। चूंकि सब कुछ स्वयं शिव ही है अतः पारमार्थिक दृष्टि से विभाग उनकी दृष्टि में नहीं है। इस कारण उनके शक्तिपात में वैषम्य नैर्घृष्य आदि दोष नहीं रहते हैं ऐसा आचार्य अभिनव गुप्त का सिद्धान्त है।

मोक्ष : काश्मीर शैव दर्शन में मोक्ष का अर्थ है – अपने वास्तविक स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा। दूसरे शब्दों में अकृत्रिम अहंविमर्श का उदय ही मोक्ष है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के अनुसार सर्वोच्च आनन्द जगदानन्द है, जिसमें सारा विश्व चित् या शिव प्रतीत होता है। यह आनन्द या मोक्ष, तर्क या बौद्धिक आतिशबाजी से मिलने वाला नहीं है, इसके लिए गुरु कृपा या शक्तिपात या अनुग्रह चाहिए। गुरू के द्वारा सिखाये गये रहस्यमय उपायों के अभ्यास से मल धीरे–धीरे शिथिल होकर शनैः–शनैः पूर्णतया धुल जाते हैं।

निष्कर्ष : काश्मीर अत्यन्त प्राचीन काल से ही आध्यात्मिक विचारों के उद्भव का केन्द्र रहा है। वहाँ शैवागमों तथा शाक्तागमों का बहुत प्रचार रहा है। शिव दृष्टि जैसे शैव ग्रन्थों के अनुशीलन से पता चलता है कि वहाँ मुख्यतया तीन शैव सम्प्रदाय थे जो द्वैत, अद्वैत और द्वैताद्वेत शैव मत के पोषक थे। अद्वैतवादी प्रत्यभिज्ञा शास्त्र द्वैताद्वैत शैव मत के पोषक थे। अद्वैतवादी प्रत्यभिज्ञा शास्त्र काश्मीर दर्शन के मुख्य शाखा रही है। सोमानन्द इस शाखा के प्रमुख आचार्य थे। इसके बाद उत्पलदेव, अभिनवगुप्त इत्यादि प्रमुख आचार्यों ने इस दर्शन को दृढ़ता प्रदान किये। जीव स्वरूप के विषय में विचार करते हुए उत्पल आचार्य इस बात पर जोर देते हैं कि परमेश्वर की स्वेच्छया पर स्वातन्त्र्य शक्ति के द्वारा विश्व को आभासित कर ग्राह्य ग्राहकादि नाम रूपों में अपने को अभिव्यक्त करता है इस प्रसंग में उन्होंने सात प्रकार के जीव प्रमाताओं का भी नामोल्लेख किया है जो इस प्रकार है– शिव, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मंत्र या विद्येश्वर, विज्ञानाकल, प्रलयाकल, और सकल इनमें से शिव से लेकर विद्येश्वर तक सभी प्रमाता शुद्ध प्रमाता कहें गए हैं, विज्ञानाकल अदेह प्रमाता है, जिसकी स्थिति महामाया के नीचे है प्रलयाकल विदेह प्रमाता है और सकल सदेह प्रमाता है। इसी प्रसंग में जीव के मलों की भी चर्चा की गई है। जिन्हें आणव मायीय और कार्म की संज्ञा दी गई है। सात प्रमाताओं में एक सकल ही मलत्रय से युक्त है। इस प्रसंग में जीव का जड़ होना सम्भव नहीं वह चेतन है तथा जीव के अजड़ (चेतन) पक्ष की युक्तियों को भी दिखाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जीव की चरम परिणति उसका परम लक्ष्य एक है, वह है शिवत्व प्राप्ति जहाँ उसे अपने में निहित अनन्त ऐश्वर्य की प्रतीति होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सर्वदर्शन संग्रह, पृ0 10
2. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ, भा0द0इ0भाग 3, पृ0 494
3. माध्यमिक कारिका–4
4. माध्यमिक कारिका– 10.16

5. माधवाचार्य सर्वदर्शन संग्रह, पृ0 86
6. राइस डेविड, बुद्धिष्ट लौजिक, भाग–1, पृ0 3–14
7. प्रमाणवार्तिक, 2.325
8. द्रव्य संग्रह– गा0 21
9. तत्वार्थ सूत्र– 2.8
10. पंचाध्याय, 2.30
11. वही, 2.6.43
12. वही
13. द्रष्टव्य पंचाध्यायी, प्रथम अध्याय, पृ0 154–172
14. वही
15. सांख्यसूत्र– 3/84
16. द्रष्टव्य सांख्यसूत्र 6–13 की वृत्ति
17. सांख्य 2–29
18. सांख्यसूत्र 1–118
19. सांख्यसूत्र 1–160
20. योगसूत्र : 4/10 (व्यास भाष्य)
21. वही
22. माधवाचार्य, सर्वदर्शन संग्रह, पृ0 654
23. न्यायमंजरी, भाग–2, पृ0 72
24. वही, पृ0 69
25. न्याय सूत्र, 3/2/60
26. श्लोक–वार्तिक, आत्मवाद, श्लोक 73
27. ब्र0सू0शा0भा0 2/3/30
28. गंगाधर सरस्वती–वेदान्त सिद्धान्त, सूक्ति मंजरी 1/43–44
29. अद्वैत सिद्धि, पृ0 561
30. मुण्डक उपनिषद– 20/1/1
31. स0द0सं0, नकुलीश दर्शन, पृ0 307
32. वही, पृ0सं0 307
33. वही, पृ0सं0 308
34. वही, पृ0सं0 309
35. वही, पृ0सं0 309
36. सर्वदर्शन संग्रह, शैव दर्शन, पृ0 332
37. वही, पृ0सं0 334
38. वही, पृ0सं0 335
39. वही, पृ0सं0 336
40. सर्वदर्शन संग्रह, शैवदर्शन, पृ0 336
41. वही

42. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, पृ0 225
43. सर्वदर्शन संग्रह, शैवदर्शन, पृ0सं0 338
44. डॉ0 चतुर्वेदी राधेश्याम, शिवदृष्टि, भूमिका, पृ0 21
45. अजड़प्रमातृसिद्धि, श्लोक–20, वृत्ति
46. अजड़प्रमातृसिद्धि, का0 16
47. स्वच्छन्दतन्त्र टीका, भाग–5, पृ0 491
48. अ0प्र0सि0 श्लोक 24
49. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, भाग–2, 3/1/7
50. षट्त्रिंशत तत्त्व संदोह, श्लोक 7
51. परमार्थसार, का0 16, पृ0 29
52. तन्त्रालोक टीका, भाग–6, पृ0 165
53. अ0प्र0सि0, का0 20 वृत्ति
54. अ0प्र0सि0, का0 20 वृत्ति
55- ई0प्र0वि0, भाग–2, पृ0 220
56. षट्त्रिंशतत्व संदोह, विवरण, पृ0 5
57. परमार्थसार, का0 60
58. सर्वदर्शनसंग्रह, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, का0 20
59. महार्थ मञ्जरी–परिमल, पृ0 32
60. प्रत्यभिज्ञा हृदयम्, सूत्र–8, पृ0 44
61. अ0प्र0सि0, श्लोक 18 वृत्ति